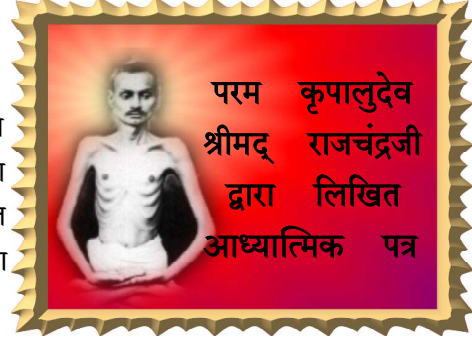


१९९

बंबई, माघ सुदी ११, गुरु १९४७

उपाधियोगके कारण यदि शास्त्रवाचन न हो सकता हो तो अभी उसे रहने दें। परन्तु उपाधिसे नित्य प्रति थोड़ा भी अवकाश लेकर जिससे चित्तवृत्ति स्थिर हो ऐसी निवृत्तिमें बैठनेकी बहुत आवश्यकता है। और उपाधिमें भी निवृत्तिका ध्यान रखनेका स्मरण रखिये।



आयुका जितना समय है उतना ही समय यदि जीव उपाधिका रखे तो मनुष्यत्वका सफल होना कब सम्भव है? मनुष्यताकी सफलताके लिये जीना ही कल्याणकारक है; ऐसा निश्चय करना चाहिये। और सफलताके लिये जिन जिन साधनोंकी प्राप्ति करना योग्य है उन्हें प्राप्त करने के लिये नित्य प्रति निवृत्ति प्राप्त करनी चाहिये। निवृत्तिके अभ्यासके बिना जीवकी प्रवृत्ति दूर नहीं होती यह प्रत्यक्ष समझमें आने जैसी बात है।

धर्म के रूपमें मिथ्या वासनाओंसे जीवको बंधन हुआ है, यह महान लक्ष रखकर वैसी मिथ्या वासनांये कैसे दूर हों इसके लिये विचार करनेका अभ्यास रखियेगा।

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्त्वचर्चा मंगल वाणी-सी.डी.२ C

प्रश्न :- सिद्धो वर्ण समाम्नाय।

समाधान :- हाँ, सिद्धो वर्ण समाम्नाय। उमराला में बचपन में वह (प्रथम शब्द सुना था)। भगवान वीतराग हुए, राग-द्वेष छूटकर भगवान हुए। वह भगवान बाहर में, आत्मा भगवान अन्दर है। उस भगवान को पहिचाने तो भगवान हो सकता है, पहिचाने बिना नहीं हो सकता।

प्रश्न :- माताजी! समवसरण कैसा होता है?

समाधान :- समवसरण में भगवान बिराजते हैं। जो भगवान आत्मा में स्थिर हो गये हों, अन्दर में उनका शरीर भिन्न होता है, उनका आत्मा भिन्न होता है। भगवान बिराजते हों समवसरण में, उनकी वाणी छूटती हो, समवसरण में देव आते हों, मनुष्य आते हों, सभा भरी हो, उसमें रत्नों के गढ़ होते हैं। अनेक प्रकारसे समवसरण अन्दर देवोंने रचना की है, समवसरण में मन्दिर होते हैं, भगवान की भक्ति करने देव, मनुष्य सब आते हैं। भगवान समवसरण में बिराजते हैं।

प्रश्न :- माताजी! भगवान विहार करके दूसरे स्थान में जाये तो वही मनुष्य, तिर्यच, देव जाते हैं या वहाँ दूसरे आते हैं?

समाधान :- दूसरे गाँव में दूसरे होते हैं, लेकिन जितने साथ में रहनेवाले होते हैं वह सब जाते हैं। जैसे मुनि, गणधर आदि सब साथ में जाते हैं। जिस गाँव के मनुष्य हैं वह सब जाते हैं ऐसा नहीं

(तत्त्वचर्चा का शेष अंश पृष्ठ सं.१७ पर)



स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४६: अंक-२६०, वर्ष-२४, जुलाई-२०१९

आषाढ शुक्ल १४, शुक्रवार, दि. १-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-६६, प्रवचन-२३

अब, ६६ में कहते हैं -
विरला जाणहिं तत्तु बुह, विरला णिसुणहिं तत्तु।
विरला ज्ञायहिं तत्तु जिय, विरला धारहिं तत्तु।।

।।६६।।

‘विरले पण्डित ही आत्मतत्त्व को जानते हैं।’ कोई विरल ज्ञानी (ही) आत्मा के तत्त्व को जाननेवाले होते हैं, उन्हें पण्डित कहा जाता है। आहा...हा...! समझ में आया? ‘विरला बुह तत्तु’ ‘बुह’ अर्थात् पण्डित है न? ‘बुह’ पण्डित है न? विरले ही ‘बुह’ अर्थात् पण्डित आत्मतत्त्व को जानते हैं। भगवान आत्मतत्त्व निराकुल शान्तरस का पिण्ड प्रभु (है), उसे तो विरले पण्डित ही जानते हैं। वे विरले पण्डित अथवा विरल (ही) उसे जाने, वे पण्डित कहे जाते हैं। आत्मा का अनुभव (किया) और जाना, वह पण्डित है। आहा...हा...! लोकालोक का प्रकाश करनेवाला भगवान जिसके अनुभव में, ज्ञान में आया, कहते हैं कि वही बड़ा पण्डित है, परन्तु ऐसे जीव विरले होते हैं। समझ में आया?

‘विरला तत्तु णिसुणहिं’ विरले (ही) तत्त्व को सुनते हैं। ऐसे तत्त्व की बात सुननेवाले भी विरल है। तत्त्व के समझनेवाले विरल... परन्तु समझनेवाले के पास ऐसे सुननेवाले विरल—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! निर्विकल्प चैतन्यतत्त्व की दृष्टि-ज्ञान और रमणता करो — यह बात सुननेवाले (विरल

हैं)। व्यवहार के रसिया, पुण्य के रसिया, विकल्प के रसिया को यह बात सुनना मुश्किल पड़ती है, कहते हैं। समझ में आया? ‘विरले श्रोता ही तत्त्व को सुनते हैं।’ ऐसे श्रोता (मिलना) मुश्किल है, कहते हैं। तत्त्व के जाननेवाले ज्ञानी विरल होते हैं। उसमें (भी) उनके पास ऐसी बातें सुननेवाले जीव विरल होते हैं। बात रुचती नहीं... समझ में आया?

विरले ही इस तत्त्व को ध्याते हैं। विरले जीव, आत्मा का ध्यान (धरते हैं)। ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध प्रभु, उसका ध्यान करें, वे तो विरल जीव हैं, विरल जीव हैं, विरल हैं। ओ...हो...! समझ में आया? यह विरला कहा। बहुत पैसेवाले हैं और बड़ी पदवीवाले हैं और बहुत सुन्दर हैं, बहुत परिवारवाले हैं... समझ में आया? स्थायी आमदनीवाला है। इसे पाँच-दस लाख की स्थायी आमदनी है... यह... स्थायी आमदनी। क्या कहते हैं? उसे विरला नहीं कहा। वे सब भटकनेवाले हैं। (लोग) बातें करते हैं, इसे तो स्थायी आमदनी, बापा! घर बैठे आमदनी, पाँच लाख-दस लाख-बारह महीने स्थायी आमदनी है। स्थायी आमदनी अर्थात् क्या? यह बैठा कहाँ है? ऐसा कहते हैं। लोग बातें करते हैं। यहाँ तो कहते हैं, विरले ही इस तत्त्व का ध्यान करें। उसे अन्दर में आनन्द की स्थायी आमदनी है। आहा...हा...! कहीं बाहर जाना पड़े नहीं और अन्दर ही अन्दर में बैठे (-

बैठे) आमदनी मिले। आहा...हा...! समझ में आया? वे विरले जीव, तत्त्व को ध्याते हैं।

‘विरले ही तत्त्व को धारण करके स्वानुभवी होते हैं।’ ऐसी बात—निर्विकल्प भगवान आत्मा की बात, विरले सुनकर, धारण कर स्वानुभव करते हैं।

यह बहुत-विरल-विरल, लाखों-करोड़ों में विरल विरल (होते हैं)। ऐसी उनकी दुर्लभता बताकर, उनकी महिमा की है। दुर्लभता कहकर उनकी महिमा की है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण १, रविवार, दि. ३-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-६६, प्रवचन-२४

यह योगसार शास्त्र है। योगीन्द्रदेव मुनि, दिगम्बर मुनि! आज से ७००-८०० वर्ष पहले हो गये हैं। उनका यह योगसार है। आज भगवान की दिव्यध्वनि का दिन है, उसमें यह गाथा ठीक आयी है। विरल, विरल बात है। भगवान महावीर परमात्मा को केवलज्ञान तो वैशाख शुक्ल १० को हुआ था, परन्तु छियासठ दिन तक दिव्यध्वनि नहीं खिरी। व्यवहार से ऐसा



कहा जाता है कि वहाँ वाणी को झेलनेवाले गणधर की उपस्थिति का अभाव था। वस्तुतः तो वह वाणी खिरना ही नहीं थी। वह वाणी.... ६६ दिन बाद इन्द्र को विचार हुआ कि यह वाणी क्यों नहीं खिरती? तो अवधिज्ञान से देखा कि इसमें कोई पात्र - गणधर आदि नहीं है, इस कारण वाणी नहीं खिरती। वाणी खिरने का तो योग था ही नहीं परन्तु शास्त्र में निमित्त से ऐसे कथन आते हैं।

‘गौतमस्वामी’ गणधर के योग्य थे। इन्द्र उनके पास ब्राह्मण का रूप धारण कर गया (और कहा कि) इसका कुछ अर्थ करो - छह द्रव्य, नौ तत्त्व-सात क्या है? वह (गौतम) कहे - भाई! मुझे नहीं आता; तुम्हारे गुरु के पास चलते हैं। उनमें छह

द्रव्य के नाम नहीं होते हैं। फिर (वे) भगवान के पास आये। वहाँ तो उनकी योग्यता थी; क्षण में जहाँ (भगवान को) देखा, समवसरण देखा, वहाँ उनका मान गल गया। अन्दर गये वहाँ तो उन्हें आत्मज्ञान - सम्यग्दर्शन हुआ और भगवान की वाणी खिरी। छियासठ दिन में दिव्यध्वनि विपुलाचल पर्वत पर ‘राजगृही’ नगरी के बाहर

वन में वहाँ भगवान की वाणी छियासठ दिन में खिरी और वह श्रावण कृष्ण एकम का - योग का पहला दिन था। योग का पहला नववर्ष था। श्रावण कृष्ण एकम को (दिव्यध्वनि) खिरी। उस दिन गणधर ने वह वाणी झेली। वाणी खिरी उस दिन झेली; उस दिन गणधरदेव, भावश्रुत ज्ञानरूप गणधर परिणत (हुए)।

भगवान ने भावश्रुत कहा.... भगवान के पास भावश्रुत है नहीं; उनके पास तो केवलज्ञान है परन्तु केवलज्ञान कहा - ऐसा शास्त्र में नहीं कहा। उन्होंने भावश्रुत का वर्णन किया। भाई! भगवान की वाणी में अकेले अर्थ आये, अर्थ आये; इस कारण भगवान ने भावश्रुत कहा - ऐसा कहा जाता है। उसे गणधरदेव ने सूत्ररूप से गूँथा। अर्थरूप से भगवान की वाणी

में आया, सूत्ररूप से गणधर ने गूँथा—वह दिन आज है। वाणी खिरने का और बारह अंग चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में क्रमसर की। अन्तर्मुहूर्त है न? असंख्य समय है। गणधरदेव ने आज बारह अंग की रचना की। उन बारह अंग में सार में सार क्या कहा गया—यह उसका कथन है।

योगसार....। बारह अंग में संयोग, विकल्प और एक समय की अवस्था की उपेक्षा करके, त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव की अपेक्षा करना—ऐसा सार, योगसाररूप से भगवान की वाणी में आया है। योगसार अर्थात् भगवान पूर्णानन्दस्वरूप ध्रुव, शाश्वत्, एकरूप, अनादि-अनन्त है। ऐसी चीज में एकाकार होकर, स्वरूप के आनन्द का वेदन होना, उसे योगसार कहते हैं। स्वरूप में एकाकार होकर आनन्द का अनुभव-वेदन करना, इसका नाम योगसार कहते हैं, जो कि मोक्ष का मार्ग है। कहो, समझ में आया इसमें? कैसा योगसार?

कहते हैं—तत्त्वज्ञानी विरले होते हैं। देखो! यह कहते हैं।

विरला जाणहिं तत्तु बुह, विरला णिसुणहिं तत्तु।
विरला ज्ञायहिं तत्तु जिय, विरला धारहिं तत्तु॥

॥६६॥

भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मज्ञानरूपी तत्त्व कहा, उसे अब 'विरले पण्डित ही आत्मतत्त्व को जानते हैं।' विरले प्राणी। आत्मज्ञान प्राप्त करना महा कठिन है, उसे 'थोड़े से प्राणी इस अनुपम तत्त्व का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।' 'विरला जाणहिं तत्तु विरला तत्तु णिसुणहिं'। सुननेवाले विरले हैं। आत्मज्ञान शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति, उसमें अन्तर में एकाकार होना - ऐसी बात सुननेवाले भी विरले हैं। समझ में आया? कहनेवाले तो दुर्लभ हैं परन्तु सुननेवाले ऐसे दुर्लभ हैं।

जो आत्मा परमानन्दरूप ध्रुव सच्चिदानन्दस्वरूप, उसमें एकाग्र होना, वह मोक्ष का मार्ग है, दूसरा मार्ग नहीं। ऐसी बात सुननेवाले सभा में भी दुर्लभ है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिसे निमित्त रुचता हो, राग रुचता हो, व्यवहार रुचता हो, उसे यह बात सुनना कठिन है। सुनना मुश्किल है। नहीं,

ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता—ऐसा कहते हैं। इसलिए कहते हैं कि 'विरला तत्तु णिसुणहिं' विरल प्राणी... भगवान आत्मा की त्रिकाल शुद्ध चैतन्यधातु में एकाकार होना ही मोक्ष का मार्ग है, यही योगसार, यही कल्याण का मार्ग है, यही मोक्ष का उपाय है। यह बात सुननेवाले भी जगत् में बहुत विरल हैं। समझ में आया? पुण्य की बातें, निमित्त की बातें, व्यवहार की बातें सुननेवाले थोक के थोक पड़े हैं—ऐसा कहते हैं। परन्तु यह आत्मा शुद्ध अखण्डानन्द का कन्द है, ध्रुव अखण्डानन्द प्रभु की अन्तर में दृष्टि करके रमना, ऐसा योग, उसका भी सार यह सुननेवाले दुर्लभ हैं। कहो, समझ में आया?

'विरला ज्ञायहि तत्तु' और विरल जीव, उसका ध्यान करते हैं। भगवान आत्मा की ओर का अन्तर में झुकाव (होना) और उस स्वरूप को ध्येय करके उसमें एकाकार का ध्यान करना, वह जीव विरल होते हैं। समझ में आया? कोई पदवी इन्द्र की मिलना या राजपाट मिलना या वे जीव विरल हैं—ऐसा यहाँ नहीं कहा है और पुण्य प्राप्त करना, या पुण्य का फल मिलना, वे जीव विरल हैं—ऐसा नहीं कहा है। भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है। उसका अन्तर-ध्यान करनेवाले जगत् में विरल अर्थात् दुर्लभ हैं। समझ में आया? शास्त्र के पढ़नेवाले भी बहुत होते हैं, कहनेवाले भी बहुत होते हैं परन्तु भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप अभेद की बात सुननेवाले दुर्लभ और उसका ध्यान करनेवाले तो बहुत दुर्लभ हैं। समझ में आया?

'विरला ज्ञायहि तत्तु' विरला जीव। 'धारहि'। 'विरला धारहिं तत्तु' धारहि का अर्थ विरल जीव, भगवान आत्मा निर्विकल्प रागरहित चीज है और रागरहित निर्मल परिणति द्वारा वह अनुभव की जा सकती है - ऐसा अनुभव होकर धारणा होना, ऐसे (जीव) जगत् में दुर्लभ है। समझ में आया? यह धारणा, हाँ! आहा...हा...! ऐसे अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा, बाहर की तो बहुत है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यप्रभु का अन्दर ध्यान करके यह चीज है—ऐसा जिसने अनुभव करके धारण किया है कि चीज यह

है और इस धारणा में से बारम्बार स्मृति करके आत्मा का ध्यान करता है—ऐसे जीव जगत् में (दुर्लभ हैं)। दिव्यध्वनि में ऐसा आया था। भगवान की दिव्यध्वनि में, बारह अंग में ऐसा आया था। विपुलाचल पर्वत पर भगवान की वाणी खिरी, उसमें यह आया था कि यह आत्मा शुद्ध अनन्त आनन्दस्वरूप है। इसका एकाग्र होकर (ध्यान करे) और यह आत्मा ऐसा है, ऐसी धारणा (करनेवाले विरल हैं)। समझ में आया?

‘विरला जिय तत्तु धारहिं’ क्या कहते हैं? दूसरी धारणा करनेवाले तो बहुत होते हैं। शास्त्र की धारणा, बोलचाल की धारणा, कहने-बोलने की धारणा, इसका यह प्रश्न और इसका यह उत्तर और ऐसी धारणा करनेवाले भी बहुत होते हैं। परन्तु यह भगवान आत्मा, सम्यग्दर्शन-ज्ञान में जो अनुभव में आत्मा पूर्णानन्द आया, अनुभव होकर उसकी धारणा करनेवाले जीव विरल और थोड़े हैं। समझ में आया?

भाई ने इसका अर्थ जरा लिखा है कि ‘आत्मज्ञान का मिलना बड़ा कठिन है, थोड़े ही प्राणी इस अनुपम तत्त्व का लाभ पाते हैं। मनरहित पंचेन्द्रिय तक के प्राणी विचार करने की शक्ति बिना...’ मनरहित प्राणी हैं, उन्हें विचार करने की शक्ति नहीं है कि मैं कौन हूँ और कहाँ हूँ? ‘संज्ञी पंचेन्द्रियों में नारकी जीव रात-दिन कषाय के कार्यों में लगे रहते हैं।’ संज्ञी पंचेन्द्रिय कदाचित् मनवाले हुए—ऐसा कहते हैं। मनरहित प्राणी को विचार तो है नहीं; मनवाले हुए तो नारकी में उत्पन्न हुआ, नारकी रात-दिन कषाय... कषाय... कषाय... के कार्यों में लगे हैं (उसमें) ‘किन्हीं को आत्मज्ञान होता है।’ बाकी इससे अनन्त गुने, सम्यक्त्वी की संख्या से अनन्त गुने मिथ्यादृष्टियों की संख्या नारकी में ऐसी है कि उसे आत्मज्ञान क्या है? ऐसा सुना भी नहीं होता।

‘पशुओं में भी आत्मज्ञान पाने का साधन अल्प है।’ पशु में भी विरल है। ‘देवों में विषयभोगों की अतितीव्रता है, वैराग्यभाव की दुर्लभता है, किसी को ही आत्मज्ञान होता है। मनुष्यों के लिए साधन सुगम हैं।’ सार ठीक लिखा है। ‘तो

भी बहुत दुर्लभ है।’ मनुष्यपने में आत्मज्ञान की सम्यग्दर्शन की, अनुभव की बात सुनना दुर्लभ और प्राप्त करना मनुष्यपने में भी दुर्लभ है। समझ में आया? कितने ही तो रात-दिन शरीर की क्रिया में तल्लीन रहते हैं कि ‘उन्हें आत्मा की बात सुनने का अवसर ही नहीं मिलता।’ मनुष्यों को... यह मनुष्यों की बात की है। कितने ही ऐसे होते हैं कि ‘व्यवहार में इतने फंसे होते हैं कि व्यवहार धर्म के ग्रन्थ पढ़ते हैं, सुनते हैं...’ अब मनुष्य आये... मनुष्य। धर्म को सुनने के लिए तैयार हुए, सुने परन्तु वे व्यवहार के ग्रन्थों में इतने फंसे कि व्यवहार-धर्म के ग्रन्थों को पढ़ते और सुनते हैं। निश्चय अध्यात्म ग्रन्थ क्या है? उसे समझने का और सुनने का समय नहीं मिलता।

मुमुक्षु :— निषेध करनेवाले भी निकले।

उत्तर :— निषेध करनेवाले (इंकार करे)। नहीं... नहीं... नहीं... यह अध्यात्म नहीं, अध्यात्म नहीं। यह व्यवहार सुनो, व्यवहार पढो। ज्ञानचन्दजी! ऐसा चलता है न? भाई! नहीं... नहीं... नहीं...।

अनेक ‘महान विद्वान (पण्डित) बन जाते हैं; न्याय, व्याकरण, काव्य, पुराण, वैद्यक, ज्योतिष की और पाप-पुण्य का बन्ध करनेवाली क्रियाओं की विशेष चर्चा करते हैं।’ व्याकरण की करे, शब्दकोश की करे, पुण्य-पाप की चर्चा करे। यह पुण्य ऐसा होता है और यह पुण्य ऐसे होता है परन्तु यह बात तो अनन्त बार की, अब सुन न! नयी बात क्या है, अनन्त काल के जन्म-मरण मिटने की चर्चा नहीं करते, चर्चा करनेवाले नहीं—ऐसा कहते हैं। हैं?

‘अध्यात्म ग्रन्थों का सूक्ष्मदृष्टि से अभ्यास या विचार नहीं करते।’ विमलचन्दजी! यह ठीक है? ऐ...ई...! राजमलजी! दोनों व्यक्ति... बदले हैं या नहीं? देखा है या नहीं इन्होंने? अध्यात्म ग्रन्थ को पढ़ने का समय भी नहीं। नहीं... नहीं... नहीं... व्यवहार करो... व्यवहार करो... व्यवहार पढो... व्यवहार पढो... यह करते-करते हो जायेगा। (व्यवहार) करते-करते धूल में भी नहीं होगा, सुन न! भगवान

आत्मा अध्यात्म की अन्तर की बातों को समझे बिना, अन्तरदृष्टि किये बिना कल्याण तीन काल में है नहीं। उसका निर्विकल्प पता लिये बिना.... आत्मा वस्तु ही निर्विकल्प है, रागरहित-पुण्यरहित-क्रियारहित-मनरहित-संगरहित—ऐसा भगवान आत्मा राग से और विकल्प से असंग ऐसे असंग तत्त्व को अध्यात्मग्रन्थ से सुनकर मनन करनेवाले जीव बहुत दुर्लभ हैं।

आनन्दघनजी भी कहते हैं - अध्यात्मग्रन्थ मनन करो, उनके स्तवन में कहते हैं अध्यात्म के शास्त्र जो आत्मा को बतलानेवाले हैं, उनका मनन करके अनुभव करना—यह जगत् में मनुष्य में सार है परन्तु कहते हैं कि कितने ही विद्वान् इसमें फँसे हैं कि अध्यात्म की सूक्ष्म दृष्टि से (पढ़ते नहीं हैं) कोई अध्यात्म पढ़े परन्तु सूक्ष्मदृष्टि से उसका अर्थ, भावार्थ क्या है, उसे नहीं समझते हैं।

मुमुक्षु :— व्यवहार धर्म से हो....

उत्तर :— हाँ, यह लिखा, समयसार में लिखा, लो! गोमटसार में ऐसा लिखा - ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुकता है। समयसार में ऐसा लिखा कि कर्म के कारण विकार होता है, आत्मा के कारण नहीं। 'कर्म विपाकी.... कर्म का विपाक, वह राग, देखो! इसमें लिखा है। कर्म का विपाक, वह राग... परन्तु वह किस अपेक्षा से? भगवान आत्मा का पाक, वह राग नहीं। भगवान आत्मा....! उसे बताने को ऐसा कहा कि कर्म का पाक, वह राग। (तो कहते हैं)—देखो! कर्म के कारण राग होता है या नहीं? देखो! अध्यात्म ग्रन्थ निकाले (और कहे) कर्म के कारण राग होता है, उसमें से निकाले कि ज्ञानावरणीय के कारण ज्ञान रुक जाता है—अर्थात् व्यवहार ग्रन्थ में से भी यह निकाला और परमार्थ ग्रन्थ में से भी यह निकाला। आहा...हा...! समझ में आया? यह पुण्य-पाप अधिकार में लिखा है। लो! यह बड़ी चर्चा आयी है। 'सम्मतपडिणिबद्धं मिच्छंतं जिणवरेहि परिकहियं' (१६१ वीं गाथा है)। है न? मिथ्यात्व के उदय से आत्मा मिथ्यात्व को पाता है, समकित का नाश करता है। अरे...! वहाँ किस अपेक्षा से बात है? भाई! आत्मा का शुद्ध आनन्दस्वभाव में विकारी परिणाम

(हों), वह तो कर्म के संग से हुआ विकार है; वह आत्मा का स्वभाव नहीं है—यह बतलाने के लिए ऐसा कहा है। कर्म के कारण विकार हुआ है—ऐसा वहाँ नहीं बताना है। विकार अपने स्वभाव से नहीं होता।

भगवान आत्मा, जिसकी गाँठ में तो अकेली वीतरागता पड़ी है। आहा..हा...! जिसकी गठरी में अकेले वीतरागता के रत्न पड़े हैं। उनमें कोई राग-द्वेष, पुण्य-पाप नहीं पड़े हैं। वह तो एक समय की दशा में कर्म के लक्ष्य से उत्पन्न किया कार्य है, वह आत्मा का नहीं है—ऐसा बतलाने के लिए अध्यात्म ग्रन्थ में (विकार) 'कर्म का कार्य है'—ऐसा कहा है। व्यवहार के ग्रन्थ में ऐसा आता है कि आठ कर्म के कारण होता है। इसमें ऐसा आता है कि कर्म के कारण राग होता है; इसलिए दोनों समान दोनों में है।

कहते हैं—सूक्ष्म दृष्टि से नहीं पढ़ते। उसमें कहने का तात्पर्य क्या है—यह विचार नहीं करते। 'निश्चयनय से अपना ही आत्मा आराध्यदेव है—ऐसा दृढ निश्चय नहीं कर सकते।' आराध्य अर्थात् सेवन करने योग्य तो भगवान यह आत्मा है। परमेश्वर वीतरागदेव, वे व्यवहार आराध्य है। समझ में आया? यह प्रभु — आत्मा, यह शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति—यही सेवन करने योग्य, आराधन करने योग्य, आराधने के योग्य एक ही है। ऐसा दृढ निश्चय, अकेले व्यवहार के शास्त्र पढ़कर अथवा अध्यात्म शास्त्र भी पढ़कर सूक्ष्म दृष्टि से यह सार निकालना चाहिए — वह सार नहीं निकालते। कहो, समझ में आया?

'अनेक पण्डित आत्मज्ञान के बिना केवल विद्या के घमण्ड में...' विमलचन्दजी! लिखनेवाले हैं, शीतलप्रसाद। लिखनेवाले लिखें, परन्तु उसका अर्थ उस प्रकार है या नहीं? वह पाठ में है या नहीं? और यहाँ दृष्टान्त भी देंगे - 'सुद परिचिदाणुभूदा' - यह स्वयं कहेंगे। भगवान, समयसार में कहते हैं कि यह राग की कथा करके राग का वेदन करके यह तो अननत बार सुनी है। इससे तो स्वयं आधार है... परन्तु पर से, राग से भिन्न और अन्तर अपने पूर्ण

शुद्ध स्वभाव से आत्मा अभिन्न है — यह बात इसने सुनी नहीं। समझ में आया? ‘धवल’ ग्रन्थ - विमलचन्द्रजी ने नहीं पढ़े इन्होंने बहुत पढ़े हैं। वे कहें - इसमें यह लिखा है; ये कहें कि यह तो निमित्तप्रधान कथन है। राजमलजी!

मुमुक्षु :— वे तो बड़े व्यक्ति हैं।

उत्तर :— बड़ा किसे कहना? धवल, जयधवल और महाधवल विमलचन्द्रजी ने बहुत पढ़ा है, बहुत पढ़ा है; फिर भी पहले आये तब अपने आप कहा कि वे तो निमित्त प्रधान कथन हैं, वस्तु तो यह है। समझ में आया? कथन व्यवहार प्रधान आया, इसलिए वस्तु वह हो गयी? कहा था न? भाई! पहले ‘बड़ोदरा’ से आये थे। क्या कहलाता है? टोली घूमने निकली थी। पहले आये थे, तब कहा था, सत्य बात है। धवल में सब कथन हैं, वे निमित्त प्रधान कथन हैं। इन्होंने पढ़ा है और उन्होंने भी पढ़ा है। पढ़ने में, किस अपेक्षा से कथन है - यह जानना चाहिए या नहीं?

यहाँ यही दृष्टान्त दिया है - ‘एयत्तस्सुवलम्भो’ निमित्त और राग से भिन्न भगवान आत्मा (है)। यह बात सुनना दुर्लभ है। समझ में आया? उससे लाभ होता है (—ऐसा माने उसे) उससे भिन्न सुनना तो दुर्लभ हुआ। व्यवहार, निमित्त, राग से, विकल्प से आत्मा को लाभ होता है — इसका अर्थ हुआ कि (आत्मा) राग से भिन्न है — यह उसे सुनना रुचता नहीं है; उसे दुर्लभ हो गया है, नहीं... नहीं... नहीं...।

पहली बात तो यह है कि जगत में भगवान आत्मा अकेला वीतरागी पिण्डप्रभु, उसकी वीतरागी परिणति द्वारा ज्ञात हो — ऐसा है; राग द्वारा वह ज्ञात नहीं होता, व्यवहार द्वारा ज्ञात नहीं होता। निमित्त द्वारा ज्ञात नहीं होता। अब जिसे, निमित्त और राग द्वारा ज्ञात होता है (—ऐसा लगता है), उसे कहते हैं कि ऐसी बात सुनना रुचेगी नहीं। समझ में आया?

अकेला प्रभु वीतरागस्वभाव से विराजमान अनादि-अनन्त वीतराग स्वभाव से विराजमान है। समझ में आया? ऐसी बात! ‘एयत्तस्सुवलम्भो, णवरि ण सुलभो विभत्तस्स’ एकत्व-स्वभाव का एकत्व और

पर से विभक्त, यह बात सुनना जगत को दुर्लभ है, परिचय में आना दुर्लभ है और अनुभव में आना उससे (भी अधिक) दुर्लभ है। कहो, समझ में आया?

कहते हैं - ‘कितने ही पण्डित आत्मज्ञान बिना केवल विद्या के...’ घमण्ड से, अध्ययन के घमण्ड से.... लो! राजमल्लजी! ठीक लिखा है। ‘क्रियाकाण्ड के पोषण में ही जन्म गँवा देते हैं...’ राग का पोषण, राग का पोषण। व्यवहार करो, व्यवहार करो, व्यवहार करो - इसमें पूरा जीवन (गँवा देते हैं)। बस! यह हमारा धर्म है, यह हमारा धर्म है। आहा...हा...! शरीर की क्रिया से धर्म होता है, कहो! ऐसे प्रश्न (करते हैं) आहा...हा...! अब यहाँ तो कहते हैं, विकल्प से धर्म नहीं होता; शरीर की क्रिया तो कहाँ रही गयी! भेद से धर्म नहीं होता। गुणी भगवान और यह आनन्द उसमें रहता है, यह आनन्द का धारक — ऐसा भेद, उससे भी धर्म नहीं होता। आहा...हा...! इसलिए कहते हैं कि भाई! जीवों को अनन्त काल में यह बात महा दुर्लभ है। समझ में आया?

‘जिनका मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायों का बल ढीला पड़ता...’ तब कहते हैं कि ‘तत्त्व की रुचि होती है। अध्यात्मज्ञान के विद्वान बहुत थोड़े मिलते हैं। जब तक ऐसे उपदेशक न मिले, तब तक श्रोताओं को आत्मज्ञान का लाभ होना कठिन है।’ मिलता नहीं, उपदेश ही मिलता नहीं। फिर (कहते हैं) ‘कहीं आत्मज्ञानी पण्डित देखने में भी आते हैं तो आत्मा के हित की गाढ़ रुचि रखनेवाले श्रोताओं की कमी दिखती है।’ नवरंगभाई! वे कहें, यह बात नहीं; हमें दूसरा बताओ, हमें दूसरा सुनाओ, हमें दूसरा सुनाओ। यह है, सुनना हो तो सुन। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है न! अरे...! तू जो निर्दोषदशा प्रगट करना चाहता है, उन समस्त दशाओं का पिण्ड ही स्वयं आत्मा है। समझ में आया? जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करना चाहता है; उन सब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का पिण्ड आत्मा है। अब उसे छोड़कर तुझे किसे लेना है? समझ

में आया?

‘जिनके भीतर संसार के मोहजाल से कुछ उदासी होती है, वे ही आत्मीक तत्त्व की बातों को ध्यान से सुनते हैं, सुनकर धारण करते हैं, विचार करते हैं। जिनके भीतर गाढ़ रुचि होती है, वे ही निरन्तर आत्मीक तत्त्व का चिन्तन करते हैं। आत्मध्यानी बहुत थोड़े हैं, इनमें भी निर्विकल्प समाधि पानेवाले, स्वानुभव करनेवाले दुर्लभ हैं।’ यह तो ध्यानी अर्थात् आत्म-सन्मुख के झुकाववाले थोड़े (हैं) ऐसा। और फिर निर्विकल्प अनुभव करनेवाले थोड़े हैं, ऐसा नहीं तो ध्यानी हो गया, इसलिए एक ही है, परन्तु आत्मा का ऐसा झुकाव करनेवाले वे दुर्लभ हैं, फिर भी उनमें निर्विकल्प वेदन करनेवाले, स्वसंवेदन ज्ञानानुभूति-आत्मानुभूति करनेवाले विरल, विरल, विरल प्राणी हैं। कहो, इसमें ऐसा नहीं कहा कि इतने शास्त्र पढ़नेवाले दुर्लभ हैं, इतने जगत को समझानेवाले (दुर्लभ हैं) और दुनिया को समझानेवाले दुर्लभ हैं। उसे तो घमण्ड कहा। आहा...हा...!

‘आत्मज्ञान अमूल्य पदार्थ है, मानव जन्म पाकर इसके लाभ का प्रयत्न करना जरूरी है। जिसने आत्मज्ञान की रुचि पायी उसने ही निर्वाण जाने का मार्ग पा लिया।’ भगवान आत्मा की दृष्टि हो गयी, आत्मा पवित्र आनन्द—यह पंथ मिला (तो) सीधी मोक्ष की सड़क चली गयी। उसे सीधा मोक्ष की तरफ पंथ गया। टेड़ा, आड़ा-अवला उसमें कुछ है नहीं। कहो, समझ में आया? एक (समयसार की) गाथा दी है, फिर सार-समुच्चय का कहा है।

‘इस भयानक व नाना प्रकार के दुःखों से भरे हुए संसार में रुलते हुए जीव ने आत्मज्ञानरूपी महान् रत्न को कहीं नहीं पाया। सारसमुच्चय शास्त्र है। अब तूने इस उत्तम सम्यग्दर्शन को पा लिया है।’ भगवान आत्मा शुद्ध आत्म पवित्र का वेदन होकर यह सम्यग्दर्शन तुझे मिला; अब कहते हैं, प्रमाद नहीं करना। इस रत्न को संभालना। समझ में आया? ‘विषयों के स्वाद का

लोभी होकर इस अपूर्व तत्त्व को खो मत बैठना।’ विषयों के स्वाद में रहकर आत्मा के आनन्द का स्वाद खोना नहीं। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसके आनन्द में रहना।

देखो न! कल उसमें आया था न? अनुभव करना। टोडरमलजी की चिट्ठी। स्वानुभव में रहना... कहो! टोडरमलजी ने चिट्ठी में लिखा है, हाँ! उन्हें खोटा सिद्ध करते हैं। हैं? अरे! भगवान, बापू! इनने बात की है, वह वस्तु की है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी... रहस्यपूर्ण चिट्ठी। ऐसी चिट्ठी यदि विदेश में होती... उस दिन सुना था। लेख में आया था कि यदि ऐसी चिट्ठी विदेश में होती तो उसका मूल्य हजारों का होता। एक-एक चिट्ठी का! उस समय दो आने में मिलती थी। (संवत्) १९८४ में पहली (बार) हाथ में आयी थी। (संवत्) १९८४ ‘अमरेली’। उसमें लेख आया था कि यह रहस्यपूर्ण चिट्ठी यदि अंग्रेजी में या ऐसे में होती तो इसकी कीमत हजारों की देते तो भी इसको कीमत नहीं होती - ऐसी अमूल्य है। इस हिन्दुस्तान में तो इसकी कीमत है नहीं। ऐसी यह चिट्ठी। इस चिट्ठी को मिथ्या कहनेवाले हैं। समझ में आया? वहाँ तो लिखा है, व्यवहार देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, वह समकित-बमकित नहीं हो सकता। लिखा है न? भाई! विमलचन्दजी! तब यह कहे होता है, देव-शास्त्र-गुरु (की श्रद्धा) वही चौथे, पाँचवें और छठवें (गुणस्थान में) समकित है। वह नहीं; व्यवहार समकित (तो) समकित कहलाता ही नहीं। आत्मा के अनुभव की प्रतीति और दर्शन के बिना समकित नहीं हो सकता। आहा...हा...! व्यवहार देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, नव तत्त्व के भेद की श्रद्धा, वह समकित है नहीं। यह रहस्यपूर्ण चिट्ठी में लिखा है। अब, ६७ (गाथा) इस ६६ (गाथा में) विरल, विरल की बात हुई।



पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार
ग्रंथके ९६९ वचनामृत पर भाववाही
प्रवचन, दि. ३-७-१९८५, प्रवचन
क्रमांक-५७८ (विषय : भेदज्ञान)

यदि तिर्यच को भी सात तत्त्वों का भान न हो तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता; क्योंकि यदि वह जीव की जाति ही न जाने तो स्व-पर को न पहचान पाए व फलस्वरूप पर में रागादिरूप कार्य किए बिना न रहे। लेकिन पशु को भी जीव-अजीवादि का श्रद्धान हो जाया करता है जिससे वह पर में रागादि के कार्य नहीं करता। कोई-कोई मेढ़क, चिडिया भी आत्मज्ञान पा लेते हैं—इन्हें जीवतत्त्व

का यथार्थ भान होता है। मेरा तो चैतन्यस्वभाव है; वैसा पर में नहीं है अतः पर सो मैं नहीं और पर मुझ में नहीं है—ऐसे पर से भिन्न 'निज स्वरूप को' (सम्यग्दृष्टि) पशु पूर्णतः जानता है, और उसे पर में एकत्वबुद्धि होकर रागादि नहीं होते। ९६९.

(गतांक से आगे...)

'यदि वह जीव की जाति न जाने तो स्व-पर को न पहचान पाए व फलस्वरूप पर में रागादिरूप कार्य किए बिना न रहे।' यदि वह अपनी भिन्न चैतन्यजाति को न पहचाने, तिर्यच भी, तो वह तिर्यच भी पर में रागादि करेगा। उसको भी कुटुम्ब-परिवार होता है, उसको भी देहात्मबुद्धि साता-असाता का प्रकार है, उसको भी भूख-प्यास आदि है। वह पर में रागादि एकत्वबुद्धि से करेगा।

श्रोता :— जीव की जाति जानना यह महत्वपूर्ण है।

पूज्य भाईश्री :— जाति अर्थात् चैतन्यजाति भिन्न है। उसकी जात स्वभाव से पहचानी जाती है। चैतन्यस्वभाव जैसा है उस जाति का जीव है ऐसे पहचानता है। जाति शब्द लिया है। जीव को पहचाने यानी जीव की जाति से—जीव के स्वभाव से जीव को पहचाने ऐसा लेना है।

यदि स्व-पर को भिन्न न पहचाने तो पर में रागादि

किये बिना रहे नहीं। 'मन, वाणी आदि को अपना मानकर वह राग किये बिना न रहे।' वाणी से ध्वनि होती है, शरीर है, अन्य संयोग हैं उसमें स्वपना मानकर उसमें राग किये बिना वह न रह सके। 'लेकिन पशु को भी जीव-अजीवादि का श्रद्धान हो जाया करता है...' जो पशु सम्यग्दृष्टि है, जो तिर्यच सम्यग्दृष्टि है उसे भी जीव अजीवादि का श्रद्धान होता है।

श्रोता :— सात तत्त्व भेद से जानता है?

पूज्य भाईश्री :— नहीं, सात तत्त्व भेद से नहीं जानता। वह तो कहेंगे कि कैसे सात का ज्ञान आ जाता है, वह कहेंगे। उसमें जो शांति है वह उपादेय है तो उसे संवर, निर्जरा, मोक्ष उपादेय है। उसे अशांति उपादेय नहीं है तो उसे विभाव उपादेय नहीं है तो उसमें पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध, उपादेय नहीं है। इस प्रकार उसमें सातों तत्त्व आ जायेंगे। इस तरह दो विभाग हो जाते हैं। हेय और उपादेय

में विभक्त हो जाते हैं। इसलिये उसे ऐसे भेद नहीं पड़ते, परन्तु भेद पड़े या न पड़े उसके साथ प्रयोजन नहीं है।

आपने घर में छिपे हुए चोर को देखा। वह छिपा है तब उसका एक अंग दिखा कि नीचे पैर दिखते हैं। परदे के पीछे है लेकिन परदा ऊँचा है इसलिये नीचे उसके पैर दिखते हैं। तो वहाँ क्यों दलील नहीं करते हैं कि चेहरा दिखे तो मानूँ, अन्यथा नहीं मानूँगा। पहचानने के बाद कहूँगा कि यह चोर है या चोर नहीं है। वह छिप गया है यही बताता है कि वह चोर है। जब घर को ताला लगाकर बाजार में गये और आने के बाद मालूम हुआ कि यह दरवाजा खुला है और ताला टूट गया है, और घर में कपाट खुला है और सब वस्तुएँ अस्त-व्यस्त पड़ी है। तो बिना देखे भी चोर आ गया है ऐसी प्रतीति वह करता है। कि शंका करता है उसमें? क्या मालूम? नहीं भी आया हो। ऐसे ही देखे बिना हम कैसे कहे? ऐसा कहे? नक्की कोई चोर आया है। आदमी हो वह अन्दर हो तो मालूम पड़ जाता है कि कोई आया है, छिप गया है। उसके पैर देख ले तो क्या विचार करेगा? चेहरा देखने के बाद नक्की करूँगा, ऐसा कहेगा?

यहाँ तत्त्वज्ञान के विषय में दलली करता है। हमें दिखता नहीं है, हमने देखा नहीं है जीव को। आप कहते हो लेकिन न जाने ऐसा है या नहीं? ऐसा हो तो क्यों मालूम न पड़े? ठीक! तर्क-वितर्क, कुतर्क करता है कि नहीं जीव? उसको प्रयोजन के साथ लेना-देना नहीं है इसलिये कुतर्क होते हैं। कोई जीव को न्यायविरुद्ध तर्क होते हैं, ऐसे कुतर्क उठायें अथवा वादविवाद के लिये चर्चा करे, सिर्फ वादविवाद करने के लिये चर्चा करे, हार-जीत के सवाल पर चर्चा करे—शास्त्र चर्चा, तब ऐसा समजना कि उसे प्रयोजन के साथ लेना-देना नहीं है। ऐसा है। बाकी, प्रयोजन के साथ सम्बन्ध हो वह तो कुतर्क में नहीं पड़ता।

श्रोता :— चोरी हुई इसकी प्रतीति हो गयी?

पूज्य भाईश्री :— हाँ, जानता है कि नहीं? जानने में प्रतीति आती है कि नहीं कि नक्की चोरी हुई लगती

है, नक्की चोर आया लगता है, कदाचित् कुछ चोरी हो गया होगा, चोर आया ही है यह बात नक्की है। यह मालूम है।

हमारे साथ ऐसा एक बार हुआ था। पीछला दरवाजा खोल दिया। ऊपर एक ताला लोक किया था लेकिन ग्रिलमें से ताला पकड़कर खोल दिया। चाबी लागू कर दी। रात को तीन बजे आवाज आयी। आवाज आ रही है। खोलकर देखा तो निकल गया, बाहर भाग गया। लेकिन कपाट खुला था। रोज के पहनने के कपड़े होते हैं, उसको ताला क्या मारना? कपाट खुला था। क्रोकरी का कपाट खुला था। नहीं तो क्या विचार हो? गलती से खुला छूट गया होगा। ऐसे ही बन्द किया होता है ना। हवा चले और रात को खुल जाये। नहीं तो कुछ चला तो जाये ना। कुछ गया तो नहीं था। जाने का चान्स भी नहीं था। आँख खुल जाये। आदमी चोरी करे उतना समय न मिले और भाग जाय। सब खुला है, यह ये सूचित करता है कि कोई अन्दर आ गया है। एक चप्पल की जोड़ी पड़ी थी वह गयी, बस! बाकी कुछ नहीं गया था। लेकिन वह आया था उसका लक्षण क्या? फिर एल्युमिनियम की बच्चों की पुस्तक की बेग थी स्कूल में ले जाने की, स्कूल की किताबें, कम्पाउन्ड में फेंक दी थी। सुबह वह बाहर पड़ी थी। चोर को देखा हो तो मानना या न देखा हो तो मानना? किसी को नहीं देखा। नहीं देखा हो तो भी वह आया था यह बात नक्की है। उसमें कुतर्क काम नहीं आता।

क्या कहते हैं? बाद में घर में सब को मालूम पड़े कि चोर घर में आ गया था, चोर घर में आ गया था। पेटी बाहर फेंकी थी। चप्पल चले गये हैं, ताला खुल गया है। लेकिन इसमें कोई बड़ी तकलीफ नहीं थी। उसका भय जाता नहीं। क्या होता है? देखा नहीं है फिर भी भय क्यों हुआ? जिस चोर को देखा नहीं उसका भय क्यों होता है? कि उसकी प्रतीति हुई उसका भय लगता है। यह प्रतीति का विषय है। देखे बिना प्रतीति होती है या नहीं होती? यह सवाल है।

आत्मा के विचार से आत्मा की प्रतीति (होती है)। प्रतीतिपूर्वक जानना, प्रतीतिपूर्वक चिंतवन, मनन, विचार कनरा। प्रतीति (सहित का) विचार साधक है और अनुभव साध्य है। बोल आ गया न? देखे बिना प्रतीति हो या न हो? होती है। देखे बिना भी प्रतीति होती है। उसको प्रतीति (कहते हैं)। वह ज्ञान की पर्याय है। वह प्रतीति ज्ञान की पर्याय है। उसके ज्ञान में निश्चय हो गया कि वह आया ही था, यहाँ चोर आया ही था। खिड़की के पास देखा तो ग्रील मुड़ गयी थी, ताला लेने के लिये हाथ डाला तो सँकरा पड़े। कोई साधन होगा। सब पक्का था।

इस प्रकार जिस-जिस लक्षण से आत्मा के अस्तित्व का निश्चय होता है, विचार में ज्ञात होता है कि आत्मा का अस्तित्व है। शरीर है सो आत्मा नहीं है। अंग-उपांग कट जाता है तो भी उस में से ज्ञानादि में से कुछ कम नहीं होता। एक मनुष्य का कहीं एक अंग कट जाये तो क्या साथ-साथ उसकी बुद्धि कट गयी? गुण तो ज्ञान है। शरीर गुण नहीं है आत्मा का। शरीर आत्मा का गुण नहीं है। शरीर दुबला हो तो उसका गुण कम हो जाये ऐसा बनता है? ऐसा नहीं बनता। इसलिये देह से भिन्न और ज्ञानादि से अभिन्न ऐसी आत्मा की प्रतीति विचार में हो सकती है। कैसा स्वभाववान है, अस्तित्ववान है, अस्तित्व स्वभाववान है, अस्तित्व में ज्ञानादि चेतना स्वभाववान है ऐसी प्रतीति बराबर हो सकती है। ऐसा प्रतीति सहित का विचार साधक है और अनुभव साध्य है, ऐसा है।

श्रोता :— जहाँ-जहाँ ज्ञान वहाँ-वहाँ मैं, ऐसा दृढ़ भाव सम्यक्त्व है।

पूज्य भाईश्री :— जहाँ-जहाँ जानपना वहाँ-वहाँ मैं ऐसा दृढ़ भाव सो सम्यक्त्व है। आगे एक वचन आ गया। जहाँ-जहाँ जानपना उस जानपने में स्वभाव को ग्रहण करना। स्वभाव को कैसे ग्रहण करना? कि जिसमें मैं-पना दृढ़पने स्थापित हुआ ऐसा ग्रहण किया। क्योंकि समकित तो सत्ता को ग्रहण करता है न? मैं-पना उसमें दृढ़ हो गया। जहाँ सत्ता ग्रहण हुयी वहाँ अपना अस्तित्व अनुभवगोचरपने ग्रहण

हो गया। ज्ञान और अस्ति दोनों एकसाथ हो गये। ज्ञानस्वभाव और उसका अस्तित्व। यह सम्यक्त्व है। ऐसा विकल्प वह सम्यक्त्व नहीं है। ऐसा अनुभव वह सम्यक्त्व है। ऐसा है।

यहाँ क्या कहते हैं? 'लेकिन पशु को जीव-अजीवादि का श्रद्धा हो जाया करता है जिससे वह पर में रागादि के कार्य नहीं करता।' कैसे हैं तिर्यच? कि 'कोई-कोई मेढ़क, चिड़िया भी आत्मज्ञान पा लेते हैं।' ठीक! मेढ़क, चिड़िया भी आत्मज्ञान पाते हैं। सिंही, बाघ भी आत्मज्ञान पाते हैं। साँप, अज़गरभी आत्मज्ञान पाते हैं। मछली भी आत्मज्ञान पाती है। है, ढाई द्वीप के बाहर मछली और मगरमच्छ हैं। बराबर आत्मज्ञान पाते हैं। चकली को क्या कहते हैं? चिड़िया। वह भी आत्मज्ञान पाती है। संज्ञी पंचेन्द्रिय है।

जहाँ-जहाँ जानपना वहाँ-वहाँ मैं ऐसा विकल्प स्पष्ट नहीं है, मन तो उसका इतना कम क्षयोपशम वाला है, लेकिन भाव को ग्रहण करता है। जहाँ-जहाँ जानपना वहाँ-वहाँ मैं ऐसा दृढ़ अन्दर में अनुभव से समकित को प्रगट करता है। बस! इतना ही है। उसको तो इतना ही संक्षेप है। अनुभव प्रकाश का जो यह वचन है उतना ही तिर्यच को संक्षेप है। आराधना में ऐसी कोई लंबी माथापच्ची है ही नहीं। वह तो इतनी विपरीतता हो गयी है इसलिये माथापच्ची करके समझाना पड़ता है। आराधना में कहाँ ... प्रत्यक्ष है आत्मा। आराधन के समय तो आराधना में आत्मा प्रत्यक्ष है।

श्रोता :— शिवभूति मुनि का दृष्टान्त है।

पूज्य भाईश्री :— हाँ, है न। शिवभूति मुनि का दृष्टान्त है। नव तत्त्व कहाँ याद रहते थे? भिन्नता का विषय भी याद नहीं रहता था। तुष-माष भिन्न हो गया, बस! इस प्रकार प्रयोजन पर उसकी तीखी नज़र जानी चाहिये। प्रयोजन की तीक्ष्ण दृष्टि और प्रयोजन के विषय में जिसकी सूक्ष्म दृष्टि है, वह प्रयोजन को साध लेता है। बहुत आसानी से, सुगमता से साध लेता है। ऐसा विषय है। ऐसा न हो तो तिर्यच को कहाँ-से (हो)? यदि ऐसी सुगमता न

हो तो उस परिस्थिति में तो तिर्यच कहाँ-से साध पाये? उसको तो बहुत अल्प उधाड़ है। रास्ते पर पशु खड़े होते हैं। कई ऐसे खड़े रहते हैं, तो भी उसको मालूम नहीं पड़ता कि कुचल जाऊँगा। इतना ट्राफिक है। धमाधम गाड़ियाँ और सब जा रहे हैं। आदमी तो हटकर, तैरकर चलता है। पशु बीच में खड़े हो जाते हैं। कितना कम क्षयोपशम है। परन्तु फिर भी उसकी प्रयोजन पर पकड़ आती है, वह काम कर लेता है। उसको भी कोई टिटकार के दूर करे तो एक ओर जाकर खड़ा रहता है। लेकिन क्षयोपशम बहुत अल्प है। जहाँ वह अपने प्रयोजन पर एकाग्र होता है... प्रयोजन का प्रकरण बहुत चल गया। वहाँ वह जीव काम कर लेता है।

यहाँ मनुष्य को तो प्रयोजन का दृष्टिकोण बहुत विकसीत हो गया है। परन्तु अन्य स्थान में—संयोग में, रूपये में, बाह्य में, इधर-उधर कहीं न कहीं ऐसा फँस गया है, प्रयोजन मानकर। फिर पूरी शक्ति वह वहाँ लगा देता है। जहाँ प्रयोजन माने वहाँ उसकी पूरी समग्र शक्ति वहाँ लग जाती है। लग जाये उतना ही नहीं, लगती हो उसको स्वयं रोक न सके। उसके पुरुषार्थ को वहाँ जाने से स्वयं रोक नहीं सकता। ऐसी परिस्थिति है।

दूसरी जगह वहाँ भी प्रतीति का विषय आता है, विचार करे तो। ऐसा सुने, शास्त्र पढ़े, विचार करे कि आत्मा में शांति सुख होना चाहिये। आखिर में सुख और शांति का आत्मा को प्रयोजन है। लेकिन उसमें प्रतीति नहीं है। जहाँ उसे बाह्य पदार्थ में प्रतीतिपूर्वक जहाँ सुख माना है, प्रतीतिपूर्वक जहाँ लाभ का प्रतीतिपूर्वक विचार कर लिया है, यह जब तक नष्ट न हो, इसकी प्रतीति आये नहीं तब तक वह प्रतीतिरूप विचार साधक होता नहीं और अनुभव साध्य नहीं होता। ...

श्रोता :- ...

पूज्य भाईश्री :- हाँ, लोभ में वह प्रतीति पड़ी है। आत्मा का विचार करे, आत्मा अनन्त ज्ञानस्वभावी है, अनन्त आनंदस्वभावी है, परिपूर्ण ज्ञान और परिपूर्ण आनंद आत्मा का स्वरूप है। लेकिन अन्दर में उसे यह विचार

प्रतीतिपूर्वक आना चाहिये। अच्छा शब्दप्रयोग है।

पूज्य बहिनश्री की चर्चा में यह विषय बहुत आता है। ख्याल रहना चाहिये। ऐसा कहता है कि मैं आत्मा का विचार करता हूँ, बहुत समय से गुरुदेव को भी सुना था लेकिन अभी भी कुछ होता नहीं है। इसलिये खेद होता है। तो कहते हैं, प्रतीति से यह विचारणा करनी चाहिये, प्रतीति रहनी चाहिये। ऐसा शब्दप्रयोग करते हैं। रोज का शब्द है इसलिये लोगों का ध्यान नहीं जाता है कि इसमें मर्म क्या है? लेकिन वे कुछ चौकस बात कहना चाहते हैं। ऐसा हो तो ऐसा हो, अन्यथा नहीं हो। फिर तो क्या है, जो स्वयं संशोधक हो तो निकाले कि वह जो कहते हो वह किस प्रकार से? इसमें क्या कहना है? और यँ ही उसे ख्याल में आये कि नहीं, नहीं। यह जो कहा वह समझ में आ गया। कहा वह समझ में आ गया। ऊपर-ऊपर से चला जाये।

श्रोता :- ...

पूज्य भाईश्री :- हाँ, आता है। बहुत बार आता है, बहुभाग आता है। जहाँ तत्त्विकार का विषय आता है वहाँ वह प्रतीति की बात आ जाती है। यह उनको ख्याल है। बराबर आता है। वह प्रतीति का विषय थोड़ा विशाल है। देव-गुरु-शास्त्र की व्यवहारश्रद्धा में भी यह प्रतीति का विषय है। यही मेरे हित के निमित्त हैं। कोई कुदेवादि में न जाये, कोई असत्पुरुष को न भजे, न अनुसरण करे। यह सब प्रकार उत्पन्न होते हैं। अन्यथा कहीं न कहीं फिर यहाँ भी जाये और वहाँ भी जाये। इसको भी माने और उसको भी माने। उसका ठिकाना नहीं होता। बाद में यह स्थिति होती है।

‘मेंढक, चिड़िया भी आत्मज्ञान पा लेते हैं—इन्हें जीवतत्त्व का यथार्थ भान होता है।’ उसे जीवतत्त्व का बराबर यथार्थ भान होता है। जीवतत्त्व का (भान हुआ) उसमें स्वयं ज्ञान से पूरे जीव को ग्रहण कर लेता है। भेदज्ञान प्रतिसमय (चलता है)। जहाँ-जहाँ जानपना वहाँ-वहाँ मैं, यह आ जाता है। ज्ञानसामान्य का प्रवाह धारावाहीरूप से ज्ञानभंडार में से आता ही रहता है। अनंत ज्ञान का भंडार

अन्दर भरा है। उसमें से ज्ञान का प्रवाह स्वयं स्फुरित होता है। दूसरा कोई उसके ज्ञान को करवाता है? उसकी ज्ञान की पर्याय चलित अंग है। उसका उत्पन्न होना होता है, तरंग है वह तो। परिणाम है वह तरंग है। अर्थात् ज्ञात हुए बिना नहीं रहता। चलित वस्तु है। स्थिर वस्तु तेरे ध्यान में नहीं आती है लेकिन चलित वस्तु ध्यान में नहीं आती है? आदमी ऐसा कहता है न? भाई! अंधेरे में सर्प पड़ा था, ख्याल नहीं गया लेकिन हिलने लगा तो मालूम पड़ा कि यह क्या? यह कौन चल रहा है? ऐसे तुझे भूले कुछ मालूम नहीं पड़ता, लेकिन यह ज्ञान की पर्याय है उसका तरंग तो तुझे दिखता है कि नहीं? तरंग तो मालूम पड़ता है कि नहीं? एक तरह से वही का वही नहीं है, नया-नया ज्ञान उत्पन्न होता हुआ दिखता है। कहाँ-से आता है जाँच कर, गहराई में ऊतर कहाँ से आता है? कि अन्दर में ज्ञान भंडार में से ज्ञान का उत्पन्न होना होता है। समझ में आये ऐसा है। परन्तु उतना रस लेकर स्वयं को अन्दर जाँच करनी चाहिये। वादविवाद में ऊतरे उसके बजाय अंतर संशोधन में ऊतरे। तर्क वितर्क में ऊतरने के बजाय, तर्कणा में जाने के बजाय अन्दर अंतर खोज में जाये तो तत्त्व उसे ग्रहण हो ऐसा है। पता लगे उसे।

तिर्यच को भी जीवतत्त्व का यथार्थ भान होता है। **‘मेरा तो चैतन्यस्वभाव है; वैसा पर में नहीं है।’** चैतन्यस्वभावी मैं मेरे में व्याप्त हूँ और मेरा चैतन्यस्वभाव मुझे छोड़कर कहीं अन्य में व्यापता नहीं है। यह तो स्पष्ट अनुभव में आये ऐसी बात है कि कहीं व्यापता है? लेकिन कोई कुछ कहे तो, मुझे कहा। वहाँ व्याप्त हो जाता है। मुझे सुना दिया। लेकिन भाई! तुझे नहीं कहा था। तो कहता है, नहीं, मुझे मालूम है। वह मुझे सुनाता है। बात किसी और के साथ करता है। लेकिन दूसरे के साथ करता है। दूसरे के साथ बात करता था न सुना रहे थे मुझे। इस तरह व्याप्त होकर वहाँ चला जाता है। कितनी बुद्धि लगाता है! ऐसा नहीं है, भाई! तेरी व्यापकता उसमें नहीं है। पर में तेरी व्यापकता नहीं है। जहाँ तू पर में व्याप्य-व्यापकभाव से नहीं है वहाँ तू अहंमपना करके व्यर्थ ही

दुःखी होता है, दूसरा कुछ नहीं है। जहाँ चैतन्यस्वभाव है वहाँ तेरी व्यापकता है। यदि इस प्रकार तू अन्दर में तेरे व्याप्यव्यापक भाव से तेरी हयाती—मौजूदगी का स्वीकार कर तो अनन्त सुख का वह मूल है। ऐसा स्वीकार वही अनन्त सुख का मूल है और वही सर्व उपाधि शांत होने का मूल कारण है। कोई उपाधि फिर तुझे नहीं है। ऐसा है।

उसे पर में से सावधानी छूट जानी चाहिये। एक बार तो सावधानी छूट जानी चाहिये। सावधानी छूटे तो उसने लाभ-नुकसान माना था उसमें फ़र्क पड़ा है। प्रतीतिरूप विचार हुआ है। लेकिन सावधानी रहा करे तो उसका प्रतीतिरूप विचार यहाँ काम नहीं करता। उसका प्रतीतिरूप विचार वहाँ काम करता है। सावधानीपूर्वक पकड़ाता है।

मेरा चैतन्यस्वभाव है वह पर में नहीं है। **‘अतः पर सो मैं नहीं और पर मुझ में नहीं है।’** पर सो मैं नहीं और मुझ में पर नहीं। बस! एक बार वह निश्चित हो जाये, चिंतामुक्त हो जाय, उपाधि रहित हो जाये तो उसका उपयोग वहाँ से निवृत्त होकर स्वरूपविचार में बराबर काम करे। नहीं तो स्वरूपविचार भी ठीक से हो ऐसा नहीं है, ऊपर-ऊपर से हो। परिणाम पररस में धिरे रहे, अन्दर में उसका रस भी न आये। यह तो बहुत रसिक विषय है कि उसका रस आये।

इसीलिये तो अनुभव प्रकाश में एक जगह... यह तो पूरा कहाँ-से होगा? एक जगह ऐसी बात ली है कि जिसकी बात करने से अनुपम आनंद आता है उसके अनुभव का क्या कहना? ऐसा कहते हैं। दीपचंदजी स्वयं शास्त्र लिखते हैं। कहते हैं कि अरे..! इस आत्मा की बात करते हैं, बात करते हुए हमे तो उसका रस आता है। आनंद आता है माने उसका रस चढ़ता है। आत्मा के गीत गाते-गाते उसका रस चढ़ता है। कैसा रस चढ़ता है? कि वह कुछ ... उसके अभेद अनुभव की क्या कथा करनी? क्या बात करनी? ऐसी बातें लिखी है।

श्रोता :— ..

पूज्य भाईश्री :— गुरुदेव का तो इस विषय पर बहुत अच्छा है। कोई भी शास्त्र पढ़ते हो, कोई भी गाथा चलती

हो लेकिन यह आत्मा... इतना उनको रस था। एक सेकन्ड के असंख्य भाग में निर्मलानंद, ज्ञानानंद, नित्यानंद प्रभु है। उतना उसमें रस आता था। उनका रस तो देखा है कि नहीं? बात-बात में वह आता है। प्रकरण पुण्य-पाप का हो, लो! अधिकार पुण्य-पाप का पढ़ते हो और रस चढ़े आत्मा का।

श्रोता :- ...

पूज्य भाईश्री :- उनका हृदय ही वह है। जिसके हृदय सिंहासन पर वह परमात्मा विराजमान है वह उसको ही गाता है। सीधी बात है। उसे उसका ही रस चढ़े। दूसरा रस कैसे चढ़े उसको? इसलिये उसकी वाणी में वह आये बिना नहीं रहता।

श्रोता :- प्रवचन के प्रारंभ में..

पूज्य भाईश्री :- प्रवचन का प्रारंभ वहाँ से हो और आदि, मध्य, अंत में वह बात आये बिना रहे नहीं। प्रत्यक्ष है कि नहीं?

श्रोता :- ...

पूज्य भाईश्री :- बहुत सूक्ष्मता से वह सब रस अवलोकन करने जैसा है। यह आत्मा.. ऐसा कहते हुए तो मानों.... अन्दर हो जाय। उतना रस चढ़ता। और पुण्य, पाप इत्यादि कोई तत्त्व की बात करनी हो तो आत्मा की हयाती इस प्रकार रखकर, स्थापित करके फिर दृष्टिकोण में यह बात उसके स्थान में कहाँ है ऐसा आता था। बहुत गहरा विषय है। अब पुण्य-पाप का स्थान क्या है। इस प्रकार सम्यक् प्रकार से ज्ञान का विषय पुण्य-पाप होना चाहिये। यूँ ही नहीं। पहाड़ा रटने का विषय नहीं है। बहुत सूक्ष्म...

कहते हैं कि, 'ऐसे पर से भिन्न निज स्वरूप को (सम्यग्दृष्टि) पशु पूर्णतः जानता है,...' तिर्यच भी बराबर जानता है। 'उसे पर में एकत्वबुद्धि होकर रागादि नहीं होते।' तिर्यच की यह स्थिति है।

प्रकाशन कार्य गतिविधि

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा 'स्वानुभूतिदर्शन' ग्रंथ पर हुए प्रवचनों को कम्प्युटर में फिड़ करने का कार्य चल रहा है। पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की जन्मजयंति प्रसंग पर आत्मावलोकन ग्रंथ पर हुए प्रवचनों के दो भाग (गुजराती में), एवं चिद्विलास ग्रंथ पर हुए प्रवचनों का एक भाग प्रकाशित करने की भावना है। तत्श्चात् राज हृदय भाग-३ और ४ (हिन्दी में), पूज्य भाईश्री की जन्म जयंति पर प्रकाशित करने की भावना है। संभवतः परमागमसार पर के प्रवचनों के दो भाग भी प्रकाशित होने की संभावना है।

स्वानुभूतिप्रकाश पत्रिका सम्बन्धित

सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्टकी ओरसे प्रकाशित हो रही स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिकाके एड्रेस सम्बन्धित किसी भी प्रकारका फेरफार, नाम डलवाना, कटवाना इत्यादिके लिये निम्नलिखित नंबर पर अपना ग्राहक क्रमांक लिखकर वोट्स एप करनेकी विनती। प्रशांतभाई जैन, मो. ९३७७१०४८६८

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (जुलाई-२०१९) का शुल्क स्व. महेन्द्रकुमारजी जैन, भावनगर के नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।



पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र

४२

कलकत्ता, २१-८-१९६३

परम उपकारी श्री सद्गुरुदेव को वंदन!

धर्मस्नेही.....शुद्धात्म सत्कार।

आपका पत्र आज मिला। परम उपकारी श्री गुरुदेव सुख-शांति में हैं व उनकी अमृतमयी धोधमार वाणी का आप लोग अपूर्व लाभ ले रहे हैं, जानकर

सहज प्रसन्नता हुई।

आपका राजकोटवाला पत्र यथासमय मिल चुका था, बहुत उत्साह भरा था; परंतु मेरा पुण्य ऐसा कहाँ कि पूज्य गुरुदेव की वाणी का बारंबार लाभ होवे। आपके पत्रों में मेरे वहाँ आनेके लिये ही मुख्यतया तीव्र अनुरोध रहता है; आनेकी योग्यता नहीं होती तो क्या जवाब दूँ? सोनगढ़ आनेका लक्ष्य रखकर बंबई तक आना हुआ, परंतु महाराजश्री के विहार से लौटने की तिथि में अकस्मात् बार-बार फेर पड़ा अतः वापस बंबई से ही लौटना पड़ा।

आपका लिखना कि “सांसारिक विकल्प पण थाय छे, अने कार्य पण थाय छे, निवृत्ति इच्छानार ने मात्र सोनगढ़मां ही वास होय” आदि - इसका क्या अपेक्षित जवाब देऊँ ? यहाँ तो पूज्य गुरुदेव ने आत्मगढ़ में वास कराकर प्रसाद चखाया है, अतः क्षणिक विकल्प भी सहज विस्मरण होते रहते हैं। कहता हूँ कि : हे विकल्पांश! तेरे संग अनादि से दुःख अनुभव करता आया हूँ, अब तो पीछा छोड़। यदि कुछ काल रहना ही चाहता है तो सर्वस्व देनेवाले परम उपकारी श्री गुरुदेव की भक्ति-सेवा-गुणानुवाद में ही उनके निकट ही वर्त! इस क्षेत्र में तो अधिक दुःखदायी है। चूँकि गुरुदेव ने इसकी उपेक्षा कराकर इससे विमुख करवा दिया, अतः यह भी लंबाकर साथ नहीं देता।

‘जैसो शिवखेत बसै, तैसो ब्रह्म यहाँ बसे,

यहाँ-वहाँ फेर नहीं, देखिये विचारके।’

मेरे प्रति आपका अनुराग ज्ञान में है। पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि तुम स्वयं अक्रिय चैतन्य ढीम हो, इस अगाध सागर का सहज अनुराग करो। पराश्रित अनुराग तो एकांते दुःख है। सुखाभासी होकर इसके रस को लंबाना उचित नहीं। अपने तो एकांत सहज ज्ञान-सुख से लबालब व ठसाठस चैतन्य ढीम बनकर जमे रहो। विकल्प व निर्विकल्प जैसी भी अवस्था होवे, होने दो।

‘करता करम क्रिया भेद नहीं भासतु है,

अकर्तृत्व सकति अखण्ड रीति धरै है,

याहीके गवेषी होय ज्ञानमाहिं लखि लीजै,

याहीकी लखनि या अनंत स्व भरै है।।’

(पत्र का शेष अंश पृष्ठ सं. १९ पर)

(पूज्य बहिनश्री की तत्वचर्चा...)

है, दूसरे गाँव में दूसरे मनुष्य होते हैं। देव जाते हैं, देव जाते हैं। कुछ देव तो साथ ही होते हैं भगवान विहार करे तब। कुछ देव जो विहार में साथ में होते हैं वह सब देव साथ में होते हैं। मुनि, गणधर आदि सब साथ होते हैं। तिर्यच का नियम नहीं है। उस गाँव के वहाँ होते हैं, दूसरे गाँव में दूसरे होते हैं।

प्रश्न :- ..समवसरण बिखर जाये तब वहाँ के जो मनुष्य और तिर्यच वहाँ के होते हैं वह सब नीचे ऊतर जाते होंगे, समवसरण बिखर जाये तब? बीस हजार सीढ़ियाँ..

समाधान :- भगवान का ऐसा अतिशय है कि सब एकदम नीचे ऊतर जाते हैं, एकदम चड़ जाते हैं। बुढ़े भी चड़ जाते हैं, बच्चे भी चढ़ जाते हैं, सब एकदम चढ़ जाते हैं और एकदम ऊतर जाते हैं। एकदम बिखर नहीं जाता, सब एकदम ऊतर जाते हैं, वैसे बिखरता है। देव ऐसा नहीं करते हैं।

प्रश्न :- समवसरण एक स्थान में कितने दिन तक रहता है?

समाधान :- उस गाँव के जितने पुण्य होते हैं उतने समय रहता है, उसका नियम नहीं है। शास्त्र में ऐसा आता है कि चार महिने वर्षाऋतु में रहते हैं। जिस गाँव के जितने पुण्य होते हैं उतना समय रहता है। वह सब कुछ निश्चित नहीं होता। भगवान का ऐसा उदय। उनको विकल्प नहीं है। सहज ही गाँव के पुण्य होते हैं तबतक भगवान बिराजते हैं, बाद में विहार करते हैं। एक महिना भी रहे, लेकिन कितने दिन रहे उसका कोई नियम नहीं है।

प्रश्न :- भगवान को चतुरमुख होते हैं या एक मुख है और चारों ओर दिखता है?

समाधान :- भगवान का मुख एक होता है और अतिशयसे चार मुख दिखते हैं। मुख चार नहीं होते। मुख एक होता है लेकिन अतिशयसे चारों ओर दिखता है। सबको ऐसा दिखता है कि भगवान मुझे दिखते हैं। चारों ओरसे भगवान दिखते हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों ओरसे भगवान दिखते हैं। उनका अतिशय ऐसा है। भगवान का समवसरण होता है, वहाँ सब देव आते हैं, मनुष्य आते हैं, राजा आते हैं। भगवान का पूरा समवसरण भरा हुआ रहता है। जब-जब ध्वनि छूटे तब पूरी सभा हाजिर होती है। रत्न के मन्दिर, रत्न के वृक्ष, सब रत्न का होता है। देवों को आश्चर्य होता है कि यह समवसरण की रचना कैसे हो गई! भगवान के पुण्यसे इसकी रचना होती है। ऐसी शक्ति हमारे में नहीं थी, यह कैसे रचना हो गई! इसप्रकार देवों को आश्चर्य होता है, ऐसे समवसरण की रचना हो जाती है।

प्रश्न :- रचना करनेवाले को आश्चर्य होता है, ऐसी रचना हो जाती है।

समाधान :- ऐसी रचना हो जाती है। ऐसा भगवान का अतिशय है। मन्दिर होते हैं, खाई, भूमि होती है, वृक्ष की भूमि होती है, अनेक प्रकार की भूमि होती है, ध्वजा की भूमि इत्यादि अनेक प्रकार की भूमि, वह सब भूमि और किले को पारकर जाये तब भगवान की गंधकूटी आती है, (जिसमें) भगवान बिराजते हैं।

प्रश्न :- भगवान को केवलज्ञान होते ही बीस हजार हाथ ऊपर चले जाये और बाद में समवसरण की रचना होती है?

समाधान :- हाँ, तुरन्त समवसरण की रचना हो जाती है। भगवान ऊपर चले जाते हैं। देव आकर समवसरण की रचना करते हैं वह तुरन्त रचते हैं। देवों की शक्तिसे तुरन्त रचना करते हैं। भगवान को जहाँ केवलज्ञान हुआ, ज़मीनसे ऊपर चले जाते हैं।

प्रश्न :- सब केवली के लिये ऐसा है?

समाधान :- केवलज्ञानी सब ऊपर जाते हैं। समवसरण का नक्की नहीं होता। ऊपर जाते हैं। तीर्थंकर तो ऊपर जाते हैं, लेकिन ऊपर सब जाते हैं। देवों को समवसरण की रचना करने में देर नहीं लगती।

प्रश्न :- महावीर भगवान का समवसरण तो भरत में रचा गया था।

समाधान :- हाँ, भरतक्षेत्र में रचना हुई थी, राजगृही नगरी में। इस भरतक्षेत्र में ही महावीर भगवान के समवसरण की रचना राजगृही नगरी में हुई थी। श्रेणिक राजा जहाँ राज करते थे। पहला राजगृही नगरी में रचना हुई, विपुलाचल पर्वत पर। फिर तो भगवानने सब जगह विहार किया।

प्रश्न :- माताजी! अन्य केवली भगवान को तो कुछ सुनने का, समझने का भाव होता नहीं तो फिर वे भी क्यों समवसरण में जाते हैं?

समाधान :- जिन्हें कुछ श्रवण करना नहीं है, समझने का तो भी वह भगवान का समवसरण होता है वहाँ बिराजते हैं। सब केवलज्ञानी भगवान नहीं, लेकिन कुछ तो बिराजते हैं। उनके बिराजमान होने का स्थान समवसरण में बिराजते हैं। बिराजे तो सही न। बिराजते हैं, कितनों को ध्वनि छूटती है, कितनों को ध्वनि का उदय हो तो दूसरे स्थान में जाते हैं। जिनको ध्वनि का उदय नहीं हो तो केवली भगवान कहाँ बिराजते हैं? भगवान के समवसरण में। सुनना नहीं है, कुछ नहीं है और बिराजते हैं भगवान के समवसरण में। ऐसा भगवान का वैभव है। भगवान के समवसरण में केवलज्ञानी होते हैं, मुनि होते हैं, वह सब भगवान के समवसरण की तीर्थंकर की विभूती है। भगवान के समवसरण में केवलज्ञानी बिराजते हैं, केवलज्ञान प्राप्त करके। जिस केवलज्ञानी को ध्वनि नहीं होती। उदय होता है वह तो दूसरे गाँव जाते हैं वहाँ गंधकूटी की रचना होती है। सब रचना होती है, पीठिका इत्यादि, सभा बैठ सके ऐसी रचना होती है। केवलज्ञानी की भी ध्वनि छूटती है, दूसरे गाँव में जाते हैं वहाँ।

प्रश्न :- भगवान विहार करे तब पादकमल की रचना होती है वह स्वयं ही भगवान के अतिशयसे रचना हो जाती है? भगवान विहार करे तब एक के बाद एक पादकमल नैसर्गिकरूपसे रचना हो जाती है?

समाधान :- देव रचना करते हैं। कमल की रचना देव करते हैं। भगवान जहाँ कदम रखते हैं वहाँ सुवर्ण कमल की रचना देव करते हैं। महावीर भगवान के समवसरण रचना हुई, ध्वनि छूटती नहीं थी। उसप्रकार का था। ध्वनि छूटने का काल था और गौतमस्वामी आये, सब का मेल हो गया। उपादान-निमित्त का।

प्रश्न :- वाणी का योग तीर्थंकर के सिवाय अन्य केवली को भी होता है।

समाधान :- हाँ, होता है, वाणी का योग होता है। होता है, कितनों को नहीं होता है, कितनों को वाणी का योग होता है। शास्त्र में आता है, जहाँ तीर्थंकर भगवान नहीं बिराजते हैं, वहाँ कोई केवलज्ञानी भी बिराजते हैं और उनकी भी वाणी छूटती है। उपदेश की ध्वनि छूटती है।

प्रश्न :- वीतराग होने के बाद राग तो है नहीं, फिर भी ऐसी करुणा..

समाधान :- उसप्रकार का पुण्यबंधन हुआ है कि केवलज्ञान होने के बाद ध्वनि छूटे।

प्रश्न :- गौतमस्वामी अन्दर पधारने के बाद सम्यग्दर्शन हुआ या बाहरसे ही?

समाधान :- वह कुछ नहीं है। मानस्तंभ देखकर आश्चर्यचकित हुए हैं। फिर सम्यग्दर्शन कब प्राप्त हुआ, वह सब अन्दर आने के बाद हुआ है। किस भूमि में और कहाँ तक आये वह कुछ आता

नहीं। बाकी मानस्तंभ देखकर आश्चर्यचकित हुआ हैं। वहाँ-से उनकी शुरूआत हो गई है, उनकी परिणति पलटने की शुरूआत वहाँ-से हो गई है। वहाँ जाते हैं तो सब हो गया। सम्यग्दर्शन हो गया, मुनिदशा हो गई, चार ज्ञान हो गये, सब परिणति वहाँ जाते ही पलट जाती है। भगवान के समक्ष गये तो एक क्षण में सब पलट गया। भगवान के दर्शन किये तबसे सब पलट गया। शुरूआत हो गई यहाँ मानस्तंभ के पास।

प्रश्न :- अन्तर पुरुषार्थ ऐसा शुरू हो गया।

समाधान :- अन्तर पुरुषार्थ की परिणति। अन्दर आश्चर्य लग गया। मैं यह सब मानता था वह जूठा है। मैंने तो माना था कि मेरे जैसा कोई नहीं है। मानो मैं तो सर्वज्ञ हूँ, ऐसी मान्यता हो गई थी। यह तो गलत है। आश्चर्य (हुआ)। अन्दर की इतनी पात्रता है कि उनको आश्चर्य लग गया कि यह है कौन?! ऐसे कैसे महापुरुष हैं! यह भगवान कौन है! ऐसा आश्चर्य लगा। अन्दर की मान्यता थी वह सब बात छूट गई। अन्दरसे एकदम पात्रता जागृत हो गई। परिणति एकदम पलट गई, एकदम पलट गई। सभी आग्रह एकदम छूट गये। मान्यता सब अन्यमत की वेदान्त की थी वह एकदम पलट गई। एकदम पलटकर एकदम सब प्रगट हो गया। आत्मा ऐसा चैतन्य है न, ऐसी पात्रता प्रगट हो गई। एकदम पुरुषार्थ शुरू हो गया।

प्रश्न :- जातिस्मरण हुआ था?

समाधान :- कोई कारण नहीं, भगवान के दर्शनसे सब हो गया है। निमित्त भगवान के दर्शन है और अन्तर में स्वयं का उपादान है।

(पूज्य सोगानीजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्र...)

वहाँ ठहरने-ठहराने के विकल्पजाल को लंबाने से क्या लाभ? विकल्पानुसार क्रिया होना आवश्यक तो नहीं। जैसा योग है, हो जायेगा। चिंता तो ओछी ही अच्छी है। निकट भविष्य में वहाँ आनेका विचार अवश्य है। परंतु सदैव की टेव अनुसार प्रोग्राम अकस्मात ही बनता है अतः समय लिखने के अयोग्य हूँ।

विकल्परस में अनुभवरस का अभाव है। एक की ओर झुककर लंबाने से दूसरे का अभाव होता है।

‘गुण अनंत के रस सबै, अनुभौ रसके माहिं।

यातैं अनुभौ सारिखो, और दूसरो नाहिं।’

विशेष मिलने पर।

असंगताका इच्छुक

नवीन प्रकाशन

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा हुए श्रीमद् राजचंद्र ग्रन्थ पर के धारावाही प्रवचनों के दो भाग- राज हृदय भाग-१ और भाग-२ हिन्दी की अर्पण विधि पूज्य सोगानीजी की जन्मजयंति प्रसंग पर सोनगढ़ में की गई। जिन मुमुक्षु भाई-बहनों को पुस्तक मंगवानी हो वे निम्न मोबाईल पर संपर्क करें। अतीन जैन-९३६८६८३९९१